IJETIR

ISSN (Online) 2583-0554

International Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (IJETIR)

Impact Factor: 5.731

Volume 4, Issue 10, October 2024

पूर्व मध्यकालीन सामाजिक संरचना

भारत कुमार[1] और डॉ. रविन्द्र सिंह[2]

शोधार्थी, विभाग इतिहास

शोध निर्देशक, विभाग इतिहास

सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर, राजस्थान

सारांश

पूर्व मध्यकालीन भारत की सामाजिक संरचना जटिल, वर्गीकृत और बहुस्तरीय थी, जो जाति व्यवस्था, धर्म, और आर्थिक स्थिति पर आधारित थी। इस काल में समाज मुख्यतः चार वर्णों में विभाजित था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र। जाति व्यवस्था के भीतर भी उपजातियों का विकास हुआ, जो सामाजिक और आर्थिक भूमिकाओं के अनुसार विभाजित थीं। ग्रामीण समाज में जाति के आधार पर श्रम विभाजन स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था। कृषि, जो अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार थी, निचली जातियों द्वारा संचालित होती थी, जबकि उच्च जातियां प्रशासन, धर्म और सैन्य कार्यों में संलग्न रहती थीं। इस काल में धार्मिक और सांस्कृतिक संरचनाओं ने भी सामाजिक नियमों और आचरण को प्रभावित किया, विशेष रूप से ब्राह्मणवाद और भक्ति आंदोलन के उभार ने सामाजिक गतिशीलता को सीमित कर दिया। धर्म, जाति और वर्ग के आधार पर समाज में असमानता व्याप्त थी, लेकिन इसी बीच विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्धि भी देखने को मिली।

मुख्य शब्दः पूर्व मध्यकालीन भारत, सामाजिक संरचना, सामाजिक असमानता ।

परिचय

पूर्व मध्यकालीन समाज राजनीतिक अस्थिरता, विकेन्द्रीकरण, स्थानीयता, आर्थिक, गतिरोध संकुचित राजनीतिक आदर्शों और मुस्लिम आक्रमणों से संत्रस्त था। छठवीं और आठवीं शताब्दी के बीच क्रमशः आर्थिक अवनति, नगरों की विघटनोन्मुख अवस्था और मध्यवर्ग की विपन्न दशा अभिव्यक्त होती है। मैती ने स्कन्दगुप्त के समय से भारी मुद्राओं में मिलावट को स्वीकार किया है और इस आर्थिक अवमूल्यन का कारण हूण व अन्य आक्रमणों को माना है।' हुएनसांग द्वारा नगरों और कस्बों की निर्जनता का उल्लेख, श्रेणियों की मुद्राओं का अभाव, छठी से आठवीं सदी के मध्य मुद्राओं का व्यापक अभाव और अपरिष्कृत स्वरूप, अस्थिर

नगरीय जीवन और पतनोन्मुख व्यापारिक दशा की ओर संकेत करते हैं। फलतः समाज कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था की दिशा में उत्तरोत्तर प्रवृत्त होता गया। स्थानीयता और अवरूद्ध अर्थव्यवस्था में ग्राम-समुदाय का जीवन बन्द इकाई में बदल गया। इस प्रकार सामन्तवाद के विकास के अनुकूल वातावरण निर्मित हुआ। व्यापार और मौद्रिक प्रचलन की क्षीणता के लक्षणों से युक्त परिस्थिति में शासकों के समक्ष कोई अन्य विकल्प नहीं रह गया था कि वे अपने अधीनस्थ अधिकारियों और सैनिक अनुयायियों।

आदि की सेवाओं के बदले उन्हें भूमि या जागीर प्रदान करते। यद्यपि रामशरण शर्मा ने छठीं शताब्दी से पूर्व शासन में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति अथवा सामन्तीकरण का सबसे बड़ा कारण ब्राह्मणों और मन्दिरों प्रदत्त भूमि-अनुदान माना जाता है, जिसका उद्देश्य ग्रहिता द्वारा ग्रामीण क्षेत्र को वर्ण-धर्म आदि के रूप में प्रस्तुत करना है पालन की शिक्षा, सामाजिक स्थायित्व और उन पर दैवी गुण सम्पन्न व्यक्ति के रूप में शासक का आरोपण था।

सातवीं शताब्दी से निश्चय ही सामन्तवाद का विकास और दृढ़ीकरण पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। गुप्तकाल से भूमि- अनुदानों में गृहीता को प्रशासनिक और राजस्व के समस्त साधनों का हस्तान्तरण, मध्य और पश्चिमी भारत के कुछ शासकों द्वारा गाँव के आन्तिरिक विवादों और उत्तर भारत से प्राप्त आपराधिक पक्ष में न्यायाधिकार ने निजी शासन क्षेत्र का निर्माण किया जिससे विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से परिणति पर पहुँची। 'ब्रह्मदेय्य' शब्द की पाँचवी शताब्दी के टीकाकार बुद्धघोष ने टीका करते हुए इसमें न्यायिक और प्रशासनिक अधिकार भी निहित बताया है। इस प्रकार गुप्त-काल में भूमिदान के प्रचलन ने ब्राह्मण सामन्तों के आविर्भाव का मार्ग प्रशस्त किया जो स्वतंत्र रूप से अनुदत्त क्षेत्रों का प्रशासन चलाते थे।'

प्रशासनिक, क्षेत्रीय अधिकार और उपाधि के वंशानुगत होने से सामन्तवादी प्रथा दृढ़ हुई जिसकी कारण केन्द्रीय सत्ता असुरक्षित और कमजोर हो गई। स्थानीयता की प्रवृत्ति दृढ़ होती गई, जिससे विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आई और राजा के अधिकार भी सीमित हो गए। इस प्रकार राजनीतिक प्रशासनिक क्षेत्र में भूमि-व्यवस्था के कारण स्थानीयता, अस्थिरता और विघटन का प्रभाव बढ़ता गया।

सामन्तवाद के उदय ने परम्परागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को भी प्रभावित किया। कालबार्न का विचार है कि सामन्तवाद के विकास से जाति-व्यवस्था के बन्धन शिथिल पड़ गये तथा समाज के उच्च तथा निम्न वर्गो का अन्तर क्रमशः समाप्त हो गया क्योंकि सामन्त किसी भी जाति के हो सकते थे। किन्तु यह मत आंशिक रूप से ही सत्य है। वस्तुतः सामन्तवाद का भारतीय जाति-व्यवस्था पर प्रभाव इतना सहज नहीं था जितना कि कालबार्न ने माना है। यहाँ सामन्तवाद का विकास चातुर्वर्ण की अव्यवस्थित स्थिति में हुआ। प्रो० यादव के

अनुसार इस काल में हम सामाजिक स्तरीकरण की दो प्रवृत्तियों को साथ-साथ चलते हुए पाते हैं। जहाँ एक ओर समाज के उच्च तथा कुलीन वर्ग द्वारा वर्ण नियमों को कठोरतापूर्वक लागू करने का प्रयास किया गया; वहीं दूसरी ओर इस युग के व्यवस्थाकारों ने विभिन्न जातियों एवं वर्गों के मिश्रण से बने हुए शासक एवं सामन्त वर्ग को वर्ण व्यवस्था में समाहित कर आदर्श एवं यथार्थ के बीच समन्वय स्थापित करने का कार्य भी किया।

आठवीं शती से समाज पर इस्लाम धर्म का प्रभाव परिलक्षित होने लगा। इसके सामाजिक समानता के सिद्धान्त ने परम्परागत चातुर्वर्ण व्यवस्था को गम्भीर चुनौती दी जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में रूढ़िवादिता की वृद्धि हुई। इस काल के लेखकों तथा विचारकों ने इस स्थिति की तुलना कलियुग से की। समाज में शुद्धता बनाये रखने के उद्देश्य से विवाह, खान-पान तथा स्पृश्यता के नियम अत्यन्त कड़े कर दिये गये। अन्तर्जातीय विवाहों को प्रचलन बन्द हो गया तथा सामाजिक संबन्ध पूर्णतया संकुचित हो गये। अन्तर्जातीय खान-पान पर भी प्रतिबन्ध लग गया। ब्राह्मणों के लिये अन्य वर्णों के यहाँ भोजन करना (आपात्-काल को छोड़कर) निषिद्ध कर दिया गया। क्षेमेन्द्र के विवरण से पता चलता है कि यह भावना प्राच्य, दाक्षिणात्य तथा गौड़ लोगों में अधिक थी। ये लोग अपने संबन्धियों के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति का स्पर्श तक नहीं करते थे। अल्बरूनी लिखता है कि दो ब्राह्मण जब भोजन करने बैठते थे तो वे अपने बीच एक कपड़े का टुकड़ा रखते अथवा लकीर खींच लेते थे। ब्राह्मणों के कुछ वर्ण इतने अधिक रूढ़िवादी थे कि जो ब्राह्मण, जैन आदि वैदिकेतर धर्मो को स्वीकार कर लेते थे उन्हें भी वे कुजात समझते थे। कलिवर्ज्य का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत विदेश यात्रा करने तथा विदेशियों से सम्पर्क स्थापित करने पर रोक लगा दी गयी। विभिन्न जातियों तथा उपजातियों की उत्पत्ति के कारण सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी।

यद्यपि इस समय भी समाज में ऐसे लोग थे जिन्होंने जाति-प्रथा की रूढ़ियों को मान्यता देने से इन्कार कर दिया। ग्यारहवीं-बारहवीं शती के जैन आचार्यों, शक्ति-तान्त्रिक सम्प्रदायों तथा चार्वाकों ने जाति-प्रथा तथा उसके प्रतिबन्धों का विरोध करते हुए कर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया। उन्होंने ब्राह्मणों की जातिगत श्रेष्ठता एवं अहमन्यता की भी खिल्ली उड़ाई। इस समय गुजरात तथा राजसीन में जैन धर्म काफी लोकप्रिय था। जाति-सम्बन्धी इसके विचार हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक उदार थे। जैन आचार्य अमितगति ने यह प्रतिपादित किया कि जाति का निर्धारण आचरण से होता है, जन्म या वंश से नहीं। बौद्ध ग्रन्थ 'लटकमेलक' में भी जाति-पाँति एवं छुआछूत की निन्दा की गयी है। शाक्त-तान्त्रिक एवं सिद्ध सम्प्रदायों ने भी जाति-प्रथा का विरोध किया। इसी प्रकार का विरोध चार्वाकों द्वारा भी किया गया। दक्षिण में लिंगायत सम्प्रदाय के आचार्य वासव ने परम्परागत जाति-व्यवस्था का खण्डन करते हुए सभी मनुष्यों की समानता का उपदेश दिया।

सामाजिक संरचना में हुये परिवर्तन से वैश्यों की दशा में पतन और शूद्रों से उनकी समकक्षता इस दिशा में पहला महत्वपूर्ण परिवर्तन था। हर्ष के युग से ही कृषि से सम्बन्धित वैश्यों की भूमिका समाप्त हो रही थी और शूद्रों की इसमें प्रमुखता बढ़ती जा रही थी।" फलस्वरूप उस युग में वैश्व निश्चित रूप से शूद्रों की स्थिति तक पहुँच गए थे। यद्यपि ग्यारहवीं से तेरहवीं सदी मे विशेषकर राजस्थान और गुजरात के क्षेत्र में वेश्यों की स्थानीयताबोधक जातियों तथा प्रशासनिक और धार्मिक कार्यों में उनकी गतिविधियों का अभिलेखों में उल्लेख पुनः इन क्षेत्रों में उनके व्यापार की गतिशीलता का प्रमाण है।" इस प्रकार वैश्य वर्ण की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। इनमें से कुछ तो भूसम्पदा के स्वामी बन गये तथा गुजरात में इनकी गणना सामन्त वर्ग के अन्तर्गत की जाने लगी। बंगाल में भी अत्यन्त समृद्ध व्यापारियों का उदय हो गया। उन्होंने बारहवीं शती में सेन तथा गौड़ वंशी राजाओं से लोहा लिया। 12 आर०एस० शर्मा के अनुसार चूंकि पूर्व मध्यकाल में बहुत बड़े पैमाने पर ब्राह्णीकरण हुआ, इसलिये अछूत जातियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। 13 अछूतों को 'अन्त्यज' कहा गया है जो गांवों तथा नगरों की सीमाओं के बाहर निवास करते है।

पूर्व मध्यकालीन समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस समय जातियों तथा प्रजातियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गयी। परम्परागत चार वर्ण भी अनेकानेक जातियों में बिखर गये। इस काल में अनेक पेशेवर जातियाँ अछूतों की श्रेणी में सम्मिलित कर ली गयी थी। अस्पृश्यता सम्बन्धी नियमों को इस युग में विस्तृत बना दिया गया था। अछूतों में चाण्डाल प्रमुख थे जिन्हें उनके आचरण के कारण अपवित्र माना जाता था। डोम तथा चर्मकार भी बारहवीं शती तक अछूत माने जाने लगे। हेमचन्द्र कृत 'देशीनाममाला' से सूचित होता है कि वे बाहर निकलते समय छड़ी पीटते चलते थे, ताकि लोग उनके सम्पर्क से बच सकें। इस काल में छुआछूत की भावना की प्रबलता का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अपरार्क तथा विज्ञानेश्वर जैसे व्यवस्थाकारों ने यह मत व्ययक्त किया कि चाण्डाल की छायामात्र पड़ने से ही व्यक्ति अपवित्र हो जाता है।

इस काल में शिल्प को जाति का आधार मान लिया गया। इस काल के प्रथम चरण में व्यापार-वाणिज्य के पतन के कारण विभिन्न शिल्पी एक ही स्थान से बँध गये तथा उनका अपना अलग-अलग वर्ग बन गया। संकीर्णता के कारण उनका स्वरूप जाति जैसा ही हो गया। चूँकि इन सभी को शूद्र वर्ग में ही समाहित किया गया, इस कारण भी शूद्रों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हो गयी।

निष्कर्ष

पूर्व मध्यकालीन सामाजिक संरचना एक जटिल और विविध प्रणाली थी, जो मुख्य रूप से जाति व्यवस्था, धार्मिक मान्यताओं, और कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर आधारित थी। इस काल में समाज चार प्रमुख वर्गों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र—में विभाजित था, जो कर्म और धर्म के सिद्धांतों से संचालित थे। सामाजिक गतिशीलता सीमित थी और जातिगत विभाजन कठोर थे। ब्राह्मण वर्ग धार्मिक और शैक्षिक मामलों में प्रमुख भूमिका निभाता था, जबकि क्षत्रिय सत्ता और रक्षा से जुड़े थे। वैश्य वर्ग व्यापार और कृषि में सक्रिय था, और शूद्र वर्ग को निम्न श्रेणी के कार्यों तक सीमित रखा गया था। स्त्रियों की स्थिति भी सीमित थी, और उन्हें घरेलू और पारिवारिक जिम्मेदारियों तक ही सीमित किया गया। इस काल की सामाजिक संरचना ने सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक स्थिरता बनाए रखने में मदद की, लेकिन यह समाज के विभिन्न वर्गों के बीच असमानता और शोषण को भी बढ़ावा देती थी, जो आगे चलकर सुधार आंदोलनों की आवश्यकता का कारण बना।

सन्दर्भः

1. मैतीः इकानॉमिक, लाइफ इन नार्दर्न इंडिया इन द गुप्ता पीरियड; पृ० 216।
2. बी0एन0एस0 यादवः सोसायटी एण्ड कलचर इन नारडर्न इंडिया इन डी ट्वेल्थ सेंचुरी; प्रा0 141 ।
3. राघवेन्द्र पांथरीः प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन; पृ० 13।
4. बी०पी० मजुमदारः द सोसियोइकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया; पृ०; 9, तथा रोमिला थापरः भारत का इतिहास; पृ० 163-164 ।
5. रामशरण शर्माः भारतीय सामन्तवाद; प्रथम अध्याय ।
6. रोमिला थापरः भारत का इतिहास; पृ० 199 |
7. कृष्णचन्द्र महाराजः प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति; प्रा0 523।
8. बी0एन0एस0 यादवः सोसायटी एण्ड कल्चर इन नारदर्न इंडिया इन डी टीवीएल्थ सेंचुरी; प्रा0 174-75।
9. कृष्णचन्द्र महाराजः प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, पृष्ठ 523। राघवेन्द्र पांथरीः प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृष्ठ 41। "आईएससीआर
10. वहीं; पृ० 13।
11. कृष्णचन्द्र महाराजः प्राचीन भारत का इतिहास और संस्कृति; प्रा0 424।
12. आर०एस०शर्माः पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन; पृ० 23।